॥ ओ३म् ॥

# प्रभु से विनय

हे प्रभु ! तू वास्तव में महादेव है, देवों का देव है। आज हम तेरी पूजा करने जा रहे हैं। तू हमारे जीवन का साथी है। आज हम अपने कल्याण की जिज्ञासा लेकर तुम्हारे समक्ष आये हैं। हे प्रभु ! आपको देवों का देव कहा है। क्यों कहा है? देखो, जो मनुष्यों के लिए देवता है जैसे बुद्धिमान, महान् आत्माएँ सँसार में मनुष्यों का कल्याण करने के लिए आता है और उपदेश देकर के यहाँ से समाप्त हो जाता है। उन देवताओं ने भी उस महादेव को अपना देव चुना। आज तुम्हें उस महादेव की शरण में जाना है। प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक देव कन्या को उस महादेव की शरण में जाना है। वह महादेव कल्याण करने वाला है। सृष्टि को नियंत्रण में रखने वाला है। वह वास्तव में महादेव है।

हे परमदेव ! कल्याण करने वाले तू हमारा कल्याण कर हम तेरे से याचना करने आए हैं। आज तू हमारी याचना को स्वीकार कर। आज तू देव न होता तो हम तेरी याचना न करते, तेरी शरण में न आते। हमने विज्ञान से अच्छी प्रकार भी देखा है। अपने पूज्यपाद गुरुदेव की कृपा से लौकिक होकर भी देखा है। परन्तु उसमें कुछ नहीं मिला। अन्त में उस महादेव की शरण में ही जाना पड़ा।

**पूज्यपाद-गुरुदेव**





अंक : 490 समग्र अंक : 565
वर्ष : 41 समग्र वर्ष : 48

## अनुक्रम


| क्रम संख्या | विषय | | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| 1. | प्रभु से विनय | पूज्यपाद-गुरुदेव | 1 |
| 2. | अनुक्रम | | 2 |
| 3. | निर्मोही राष्ट्र | पूज्यपाद-गुरुदेव | 3-22 |
| 4. | भौतिक और आध्यात्मिक कार्य | पूज्यपाद-गुरुदेव | 23-26 |
| 5. | माता का स्वरूप | पूज्यपाद-गुरुदेव | 27-28 |
| 6. | माता गंगोत्री का पति को आदेश | पूज्यपाद-गुरुदेव | 29-31 |
| 7. | Spiritual Light | Pujyapad Gurudev | 32-39 |
| 8. | दान, पुस्तकों की सूची व सूचना इत्यादि | | 40 |


## श्रावणी पर्व

परमपिता परमात्मा की असीम अनुकम्पा और पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज की पावमानी प्रेरणा से रक्षाबन्धन के शुभावसर पर दिनाँक 21-8-2013 दिन बुधवार को प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी लाक्षागृह, बरनावा में सामवेद ब्रह्म-पारायण महायज्ञ का आयोजन श्री गाँधी धाम समिति द्वारा किया जा रहा है। आप सभी इस यज्ञ में अपने परिवार, सगे-सम्बन्धियों एवम् मित्रों सहित सादर आमन्त्रित हैं।

**श्री गाँधी धाम समिति (पञ्जी.)**

॥ ओ३म् ॥

# निर्मोही-राष्ट्र

जीते रहो,

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद वाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वह परमपिता परमात्मा महिमावादी हैं और उसका ज्ञान और विज्ञान सदैव अनन्तमयी माना गया है। जिसके ऊपर ऋषि मुनि परम्परागतों से ही अन्वेषण करते रहे हैं और अनुसन्धान करते रहे हैं कि वह परमपिता परमात्मा अनन्तमयी ज्योतियों का स्वामी कहा जाता है। वह एक परमपिता परमात्मा की आराधना और उसकी महिमा को सदैव हम निहारते रहें और उसके अमूल्य जगत को परा विद्या में हम दृष्टिपात करने वाले रहें। क्योंकि हमारे यहाँ दो प्रकार की विद्याओं का परम्परागतों से बेटा ! उल्लेखनीय विचार मिलते रहे हैं। एक विद्या है तो दूसरी पराविद्या है। तो वह जो पराविद्या है उसको जानना हमारा कर्त्तव्य माना गया है। एक विद्या है जिसको हम सदैव दृष्टिपात करते रहते हैं और एक पराविद्या कहलाती है। जो परा उस परमपिता परमात्मा के सम्बन्ध में और उसी के ऊपर हम सदैव विचार-विनिमय करते रहें कि वह परमपिता परमात्मा विभु और उनके सम्बन्ध में प्रायः पराविद्या में वह विचार आता रहता है। जिसके ऊपर मानव परम्परागतों से ही अपने उन गम्भीर मुद्राओं में अपने को ले जाता है। जहाँ एक-एक कण-कण में उस ब्रह्म को दृष्टिपात करता है और अणु और विभु के ऊपर विचार-विनिमय करता रहता है। तो मेरे प्यारे ! वह पराविद्या कहलाती है और एक विद्या होती है जो





सँसार के सम्बन्ध में और सँसार में भी मानो देखो जिसको दृष्टिपात करके हमें ज्ञान होता है और उस ज्ञान और विज्ञान में हम सदैव रमण करते रहे हैं। तो विचार आता रहता है कि हम परमपिता परमात्मा की उस ज्ञान और विज्ञान में जाने का हम प्रयास करें जहाँ हमारे मनों, हृदयों में शान्ति की प्रायः स्थापना होती है और हमें एक ऐसा एक मार्ग प्राप्त होता है जिस मार्ग में हमें उत्तेजित नहीं होना होता परन्तु उसमें परम शान्ति की प्राप्ति होती है।

## पराविद्या का काल

आओ बेटा ! आज मैं इस मन वृतो वाचन देवत्वाम् ब्रह्मणेः मानो देखो उस ब्रह्म की आभा में मानव को रत्त रहना चाहिए। आज मैं बेटा ! तुम्हें एक ऐसे क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ मानव पराविद्या में कितना रत्त होता है और राजाओं का साम्राज्य भी पराविद्या में परणित होता रहा है। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब भगवान् मनु के यहाँ नाना प्रकार के राज्य सभाओं की चर्चाएँ होती रही हैं और मनुवंश में ऐसे-ऐसे राजा हुए जिन राजाओं के यहाँ राष्ट्र में परम शान्ति की प्राप्ति होती रही है और जहाँ मानो देखो मृत्यु की विडम्बना नहीं होती। अन्धकार अज्ञान का नहीं होता, वहाँ सदैव प्रकाश की प्रतिभा प्रायः मानव के जीवन में सदैव अपने में धारयामि बनी रहती है। प्रत्येक मानव यह चाहता रहता है कि मैं मृत्युञ्जय बन जाऊँ और मैं अन्धकार में न चला जाऊँ। प्रत्येक मानव यह परम्परागतों से विचारता रहा है। राजा भी यह चाहता है मेरी प्रजा में परमशान्ति हो और मैं भी परम शान्ति युक्त बनूँ। प्रत्येक मानव के हृदय में यह आशंका बनी रहती है कि मेरी मृत्यु न हो जाए परन्तु वह पुनः मृत्युञ्जय बनना चाहता है। मेरे प्यारे ! इसके ऊपर आओ आज हम कुछ सूक्ष्म सा विचार-विनिमय करें। क्या मानव के हृदय में और प्रत्येक प्राणी मात्र के हृदय में यह विडम्बना रहती है, क्या मैं अन्धकार में न जा करके प्रकाश में रत्त हो जाऊँ और मैं प्रकाशवान बन जाऊँ।

बेटा ! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जिस काल में बेटा ! देखो मनु वंश में एक राजा हुए हैं और उन राजा का नाम मधुकेतु वेतू राजा मधुकेत वेतु मनु कहलाते थे और मधुकेत राजा अपने मन में बड़े सम्भवः अतः मनमस्तिष्क और आत्मा की मानो जहाँ देखो उनमें विवेकता उनके हृदय में ओत-प्रोत रहती। परन्तु जैसे राजा का क्रियाकलाप होता है इसी प्रकार प्रजा का भी वही क्रियाकलाप होता है। समाज में, गृह में रहने वाला प्राणी मात्र मानो देखो उसी प्रतिक्रिया में रत्त रहता है। तो मुनिवरो ! मुझे वह स्मरण आता रहा है। राजा के राष्ट्र में बेटा ! विवेकी महात्मा रहते हैं-जो राजा ब्रह्मज्ञानी होता है तो उसके राष्ट्र में मानो देखो महापुरुष भी विवेकी होते हैं। बेटा ! जब राजा में रूढ़िवाद, राजा में स्वार्थ की प्रबलता हो जाती है, स्वार्थ बलवती हो जाता है तो उस राजा के राष्ट्र में मानो प्रजा में अशान्ति हो जाती है और वह स्वार्थता की प्रतिभा में रत्त हो जाता है। इसलिए मुझे वह काल आज पुनः से स्मरण आ रहा है जहाँ राजा अपने राष्ट्र में मानो भ्रमण करते रहते थे। प्रजा में अपने में स्वयँ निर्मोही बनने का वह प्रयास करते रहते क्योंकि राजा जब न्याय करता है तो वह निर्मोही होता है। कोई भी न्यायाधीश हो वह निर्मोही होता है। उसके लिए प्रजा और देखो अपना पुत्र दोनों एक ही तुल्य होते हैं और यदि उसमें पक्षपात आ जाता है तो वह न्यायालय नहीं कहलाता। इसी प्रकार राजा देखो भगवान् मनु के यहाँ मनु वंश में देखो राजा के यहाँ न्याय होता निष्पक्षम भविताम् भूतम ब्रह्मणा आपे। मेरे प्यारे ! देखो उसमें किसी प्रकार की विडम्बना नहीं होती।

## राजकुमार व्रतु का भयँकर वन में कौटिल्य ऋषि से सँवाद

राजा अपने मृत्यवे तो मुनिवरो ! देखो ! राजा के एक राजकुमार था जिसका नाम व्रतु कहलाता था। तो व्रतु मानो देखो वह ब्रह्मचारी एक समय देखो व्रतु उसने अपने नामोकरण के आगे और पिछले भाग में कुछ उपाधियाँ थीं और व्रतु निर्मोही उनका नामोकरण था।





तो बेटा ! वह एक समय भ्रमण करते हुए भयँकर वन में पहुँचे और वन में जा करके वह रात्रि समय एक महापुरुष के यहाँ उन्होंने निवास किया और निवास करने के पश्चात् जब विश्राम किया। तो मुनिवरो ! देखो राजा कौटिल्य ने देखो उनका नाम कौटिल्य ऋषि था। तो कौटिल्य ऋषि ने कहा हे राजकुमार तुम्हें रात्रि समय समाप्त हो गया, रात्रि चली गई है तुम कौन हो, तुम्हारा परिचय क्या है? तो उन्होंने कहा कि मेरा परिचय, मेरा नाम निर्मोही है। उन्होंने कहा व्रतु निर्मोही मेरा नामोकरण है। उन्होंने कहा तुम्हारे पिता का नामोकरण। उनका नाम भी निर्मोही है। उन्होंने कहा तुम्हारा राज। उन्होंने कहा राज का नाम भी निर्मोही है। उन्होंने पुनः प्रश्न किया कि तुम्हारे नगर का क्या नामोकरण–निर्मोही। तो उस समय कौटिल्य ऋषि ने कहा हे राजकुमार निर्मोही तो वह होता है जिसको किसी से मोह नहीं होता और मोह के बिना मानो देखो कोई पालन नहीं करता है। उस समय राजकुमार ने कहा कि नहीं प्रभु देखो निर्मोही वह होता है जो मानो देखो मोह नहीं करता, प्रीति करता है, कर्त्तव्य का पालन करता है और **जो कर्त्तव्यवादी प्राणी होते हैं वह निर्मोही कहलाते हैं।** परन्तु जिनके द्वारा कर्त्तव्य नहीं होता और वह अपने और मेरे और तुम्हारे में अन्तर्द्वन्द्व में सभी वृतियाँ हो जाती हैं तो वह न्यायालय में न्याय नहीं कर सकता। गृह में शुद्धिकरण नहीं कर सकता और वह सदैव मानो देखो पक्षपात से, पक्षपात से युक्त होता है। तो वह मानो देखो अपने में अपनेपन को प्राप्त होता रहता है।

## ऋषि का राजा के पास गमन

मेरे प्यारे ! देखो जब उन्होंने ऐसा कहा–उन्होंने कहा तो हे राजनम् ब्रहे, हे राजकुमार मैं तुम्हारे पिता से–उन्होंने कहा प्रभु आप यह परीक्षा कीजिए। मेरे प्यारे ! देखो कौटिल्य ऋषि महाराज ने वहाँ से गमन किया और भ्रमण करते हुए मुनिवरो ! देखो मनु वंश

के जो राजा राज करते थे वह उनके द्वार पर पहुँचे। तो राजा ने दृष्टिपात किया आज बिना सूचना के एक ब्रह्मवेत्ता ऋषि का मुझे दर्शन हो रहा है। तो मेरे प्यारे ! उन्होंने राजस्थली को त्याग दिया। उन्होंने कहा आईये राजन्, आइये ऋषिवरम तुम राजाओं के राजा हो, महापुरुष हो परन्तु बिना सूचना के आपका आगमन हुआ इस कारण को मैं जानना चाहता हूँ। मेरे प्यारे ! देखो ऋषि विद्यमान हो गये और ऋषि के चरणों की वन्दना करते राजा ने कहा भगवन् मुझे कारण, आप बिना सूचना के एक ब्रह्मवेत्ता का आगमन होना एक राजसभा में यह आश्चर्य से युक्त है। उन्होंने कहा हे राजन् मैं तुम्हारे कुछ कार्यवश आया हूँ। उन्होंने कहा भगवन् मैं प्रार्थी हूँ। उन्होंने कहा तो तुम्हारा एक राजकुमार है और वह राजकुमार मेरे आश्रम में मानो देखो एक व्याघ ने, सिंह ने आकर के देखो उस राजकुमार के दो भाग कर दिये हैं और मेरी इच्छा यह है क्या वह मृतक शरीर को मैंने सुरक्षित किया है। इस मृगराज से, मैंने सिंह राज से उसकी रक्षा की है और वह मृत्यु को प्राप्त हो गया। मेरी इच्छा यह है कि आप अपने यहाँ देखो उसका दाह सँस्कार करें। जब राजा से यह कहा कि दाह किया जाए उसको गृह में लाया जाये।

## राजा की ऋषि से वार्ता

मेरे प्यारे ! देखो उस समय राजा ने कहा हे भगवन् ! आपको यह प्रतीत है कि आप किससे वार्ता प्रगट कर रहे हैं। उन्होंने कहा मैं एक राजकुमार के पितृ से वार्ता प्रगट कर रहा हूँ। उन्होंने कहा कि नहीं मैं राजकुमार का पिता नहीं हूँ वह तो एक संकल्प है। परन्तु मैं एक राजा हूँ। राजा से वार्ता प्रगट कर रहे हो और राजा के राष्ट्र में जितना प्राणी मात्र रहता है वह राजा के लिए सब एक ही तुल्य होता है। चाहे उस राजा के राष्ट्र में हिंसक रहो चाहे अहिंसक रहो परन्तु सब प्राणी मानो देखो प्रभु की सृष्टि





से आंकने वाला राजा होता है। तो हम उसको अंकित करते रहते हैं तो हमारे लिए सब एक ही तुल्य हैं। हे ऋषिवर ! आपको यह प्रतीत है। आप तो ब्रह्मवेत्ता हैं। मुझे आपके ब्रह्मज्ञान का प्रतीत है कि आप कितने ब्रह्मवेत्ता हैं परन्तु देखो हे ब्रह्मवेत्ता आपको यह तो प्रतीत है कि वह जो शरीर है वह पञ्च महाभूतों का पिण्ड है और पञ्च महाभूतों का पिण्ड होने से वह मानो देखो आत्मा उसमें विद्यमान रहती है। आत्मा जब तक इस शरीर में विद्यमान है जब तक यह चेतनित बना रहता है। जैसे अग्नि में जब तक तेज है जब तक वह अग्नि के स्वरूप को, अपने को धारण करता रहता है और जब अग्नि का देखो दाह उससे चला जाता है तो वह मानो देखो पृथ्वी के रज रह जाते हैं। वह पृथ्वी के रज में रजित हो जाता है। इसी प्रकार जब यह आत्मा इस शरीर से निकल जाता है तो हे प्रभु यह शव, यह शरीर रह जाता है और शव रहने से वह शरीर मानो देखो किसी का भोज्य बन करके रहता है और वह भोज्य मानो देखो सिंह राज का है। वह सिंह का भोजन है। हे प्रभु ! देखो आत्मा नष्ट नहीं होता। जब हम ऋषि-मुनियों के या वैदिक साहित्य में प्रवेश करते हैं तो यह प्रतीत होता है क्या अग्नि के परमाणु अग्नि में समर्पित हो जाते हैं। जल, जल में प्रवेश हो जाता है। गुरुत्व पृथ्वी में प्रवेश हो गया, पृथ्वी में रत्त हो गया है। हे प्रभु ! यह तरलत्व आपो आपो में प्रवेश हो जाता है और यह प्राण वायु में प्रवेश कर जाते हैं और अवकाश मानो अन्तरिक्ष में चला जाता है। और आत्मा अपने चित्त के मण्डलों को ले करके यह आत्मा शरीर को त्याग देता है। तो हे प्रभु ! मैं यह जानना चाहता हूँ क्या सँसार में भगवन् मृत्यु, जिसे आप मृतक कहते हैं वह शव है, वह है क्या? मैं उसको शव स्वीकार नहीं करता हूँ। उसका जो अपना मौलिक स्वरूप है वह अपने मूल्यवान तत्त्वों में रत्त हो गया है और वह पार्थिव तत्त्व, गुरुत्त्व रह गया है परन्तु वह गुरुत्त्व में प्रवेश हो जावेगा। हे प्रभु ! मैं यह जानना

चाहता हूँ क्या वह जो शरीर है वह तो सिंह का भोजन बन गया है। आप सिंह को उदर की पूर्ति करने दीजिए। क्योंकि राजा के राष्ट्र में जितना भी प्राणी मात्र है वह प्राणी मात्र मानो देखो राजा प्रजा का स्वामी होता है और राजा का स्वामी परमपिता परमात्मा होता है और परमपिता परमात्मा अहिंसा में निहित रहने वाला है। इसलिए राजा को भी अहिंसा परमोधर्म का पालन करते हुए प्रत्येक प्राणी प्राणी से स्नेह की वार्ता होनी चाहिए और स्नेह से स्नेह की युक्तता होनी चाहिए। यहाँ देखो गान गाने वाला जब साम-गान गाता है जब वह गान गाने लगता है तो वह प्रत्येक प्राणी को प्रभु का गान, प्रभु का अहिंसामयी विचार वह उसका ज्ञान वह उनको सभी को प्रिय होता है क्योंकि आत्मा के लिए सभी ज्ञान प्रिय होते हैं परन्तु देखो इसलिए वह रूढ़ि नहीं वह केवल एक मानो देखो प्रतिभाषितता मानी जाती है।

जब मुनिवरो ! देखो राजा ने ऋषि कौटिल्य मुनि को इस प्रकार का उपदेश, इस प्रकार की वार्ता प्राप्त करने लगे तो वह बड़े आश्चर्य युक्त हो गये। उन्होंने कहा राजन् आप ऐसा नहीं करेंगे। उन्होंने कहा कि मेरे लिए सिंह राज और एक पुत्र मेरा जिसे तुम पुत्र कहते हो वह एक ही तुल्य हैं क्योंकि मानव में प्राणी प्राणी में किसी प्रकार का दोषारोपण नहीं होता। प्राणी मात्र जो है यह **जब परमपिता परमात्मा ने सृष्टि का सृजन किया तो एक दूसरा प्राणी मानो देखो प्राणी का सहयोगी कहलाता है।** प्राणी प्राणी का सहयोगी बन करके एक दूसरे का आहार बन करके यह मानव देखो सृष्टि का चक्र चल रहा है। यह चक्र चलता ही रहेगा प्रभु ! परन्तु देखो जहाँ तक रक्षा का सम्बन्ध है मानव को अपनी आत्मा की रक्षा करनी चाहिए क्योंकि आत्मा इस शरीर में भासता रहता है और आत्मा ही मानो एक चेतना का पुञ्ज कहलाया गया है। **इसलिए आत्मवेत्ता कहते हैं कि आत्मा को जानो** परन्तु देखो यह जो शरीर है यह तो जाना नहीं जाता परन्तु





देखो जब इसके जानने, इसको देखो आत्मा को मानव जान लेता है तो आत्मवेत्ता बन जाता है और परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। वह उसका वर्णन नहीं कर सकता। इसलिए यह जो शरीर है यह पञ्च महाभूतों का पिण्ड है और यह पिण्ड मानो देखो अपने-अपने अव्ययों में रत्त हो जाता है। तो इसलिए देखो मैं मृतकता को स्वीकार नहीं करता हूँ ऋषिवर। मेरे प्यारे ! देखो कौटिल्य से राजा ने कहा प्रभु ! आप यहाँ मेरे स्वागत को स्वीकार कीजिए। मेरी इच्छा यह है कि आप मानो देखो मेरा, राष्ट्र का अतिथि स्वीकार कीजिए जिससे मेरा राष्ट्र मानो सुशोभित हो जाए और मैं अपने में धन्यवाद का पात्र बन सकूँ। उन्होंने कहा कि मुझे तो क्षुधा नहीं है।

## कौटिल्य ऋषि का माता के द्वार पर जाना

मेरे प्यारे ! देखो राजा को त्याग करके उन्होंने कहा कि देखो राजा; पिता को इतना मोह नहीं होता चलो माता के द्वार पर चलते हैं और वह माता के द्वार पर पहुँचे। तो माता ने भी उसी प्रकार ऋषि का स्वागत किया और स्वागत करने के पश्चात् उन्होंने कहा आओ भगवन् विराजो। वह विराजमान हो गये। मेरे प्यारे ! देवी ने कहा, माता ने कहा कहो ऋषिवर कैसे आगमन हुआ है? उन्होंने कहा कि महाराज हे मातेश अमृतम राजन् नमम्ब्रहे तुम तो राजमाता हो परन्तु देखो मेरी इच्छा यह है कि तुम्हारा एक पुत्र है और वह पुत्र मेरे आश्रम में उसका शव है और वह सिंह राज ने उसके दो भाग कर दिए हैं और मैं उसकी रक्षा करता हुआ आया हूँ। मेरी इच्छा यह है कि उसका दाह सँस्कार किया जाए विधिवत। उन्होंने कहा बहुत प्रिय। उन्होंने कहा, देवी बोली कि प्रभु हम दाह किसका करें? हम दाह किसका करें, कौन सी वस्तु है जिसका हम दाह करेंगे? परन्तु जब इस शरीर से आत्मा चला जाता है तो आत्मा तो अपने चित्त के मण्डल को ले करके चला जाता है तो उसका दाह नहीं होता क्योंकि वह तो एक चेतना है और चेतना

का दाह नहीं हुआ करता है। परन्तु रहा यह शरीर में जब सृष्टि के पिता ने इसका सृजन किया तो इसमें मानो देखो प्राण का, गति का प्रदूष बनाया वायु को और तेज का जो पुञ्ज बनाया, अग्नि का पुञ्ज बनाया अग्नि को और मानो देखो जब उन्होंने आपो का वृत बनाया तो वह पिपाद बन गया और वह पिपाद भिन्न-भिन्न प्रकार के रूपों में रत्त होता रहता है। उसी पिपाद से माता के गर्भस्थल में एक बिन्दु से एक मानो देखो एक शिशु का निर्माण होता है। देवताजन हैं वह आत्मा के मानो होते हुए उसमें वास करते रहते हैं और आत्मवेत्ता इसके ऊपर चिन्तन मनन करते रहे हैं। परन्तु देखो जब हम वायु के और जब हम आपो के द्वार पर जाते हैं तो आपो ही मानो देखो ओढ़न और आसन बना रहता है और वन जाने से मानो देखो आपो एक ज्योति के रूप में रत्त रहता है। मेरे प्यारे ! देखो उसका भी दाह नहीं होता और यह गुरुत्व पृथ्वी का गुण है। यह गुरुत्व मानो इस सँसार का पिण्डाकार बना देता है।

आज जब मैं लोक-लोकान्तरों की यात्रा में प्रवेश करती हूँ ऋषिवर तो मानो देखो मुझे ऐसा प्रतीत होता है। जब मैं योगाभ्यास में और मैं इन लोक लोकान्तरों की उड़ानें उड़ने लगती हूँ तो यह जो पिण्ड मुझे दृष्टिपात आ रहे हैं मानो एक पिण्ड एक माला की भाँति है। जैसे एक माला में धागा है और धागा में पिरोये हुए मानो देखो वह मनके हैं तो इसी प्रकार मुझे एक ही सूत्र में यह मनके मुझे दृष्टिपात आ रहे हैं। मानो जब मैं यह विचारती रहती हूँ क्या जब मैं वेद के वागंमय में प्रवेश करती रहती हूँ और प्रभु की सृष्टि को विचार-विनिमय करती हूँ तो मानो देखो मेरा ध्यानावस्थित गुरुत्व के ऊपर जाता है और यह गुरुत्व माता के गर्भस्थल में भी पिण्डों का निर्माण करने वाला है। कहीं पुत्री का निर्माण है तो कहीं पुत्र का पिण्ड बन रहा है। कहीं पुत्री का पिण्ड है कहीं मानो देखो प्रत्येक प्राणी के गर्भस्थल में पिण्डों का





निर्माण हो रहा है। जब मैं बाह्य जगत में परमात्मा के ब्रह्माण्ड में प्रवेश करती हूँ तो कहीं पृथ्वी के पिण्ड दृष्टिपात आते हैं। कहीं मानो यह पृथ्वियाँ नाना प्रकार के पिण्डों आकार वाली यह पृथ्वी की एक सूत्र में परिक्रमा करते रहते हैं। कहीं मानो देखो यह सूर्य भी मुझे पिण्ड के रूप में दृष्टिपात आते रहते हैं। यह सँसार एक पिण्डमयी बना हुआ है परन्तु देखो जब मैं लोक-लोकान्तरों की निहारिका और आकाश गँगा में प्रवेश करती हूँ तो वहाँ भी मुझे मानो देखो यह सँसार पिण्ड के रूप में दृष्टिपात आता है। इसीलिए हमारे यहाँ मानो देखो पिण्डाकार यह जगत माना गया है। इसकी रचना भी पिण्डाकार के रूप में स्वीकार की जाती है। तो क्या हे प्रभु ! यह भी मानो देखो इस गुरुत्व का भी मैं दाह नहीं कर सकती। मैं दाह किसका करूँ? मानो देखो गुरुत्व पृथ्वी का गुण है। पृथ्वी ज्योंकि त्यों है और यह मानो देखो जितना भी तरल पदार्थ है यह भी दाह करने योग्य नहीं क्योंकि यह जल का गुण है और जल देखो इस सँसार में विद्यमान है उसे आपो कहते हैं। हे प्रभु ! देखो जितना भी मानो देखो यह जकड़ा हुआ सँसार है एक दूसरे में कटिबद्ध हो रहा है। यह मानो देखो एक पिण्डाकार अग्नि मानो इसमें विद्यमान रहती है जो लोक-लोकान्तरों को अपने तेजोमयी भ्रमण करा रही है। मानो देखो प्राण शक्ति को ले करके वह गमन कराती रहती है। प्राण देखो उसका भी दाह नहीं होता है। हे प्रभु ! अन्तरिक्ष में मानो गमन करने वाला उसका भी दाह नहीं होता।

हे प्रभु ! मैं कौन सी वस्तु का दाह करूँ जिसको मानो देखो विधिवत तुम उच्चारण कर रहे हो। मैं दाह करने में किसका दाह करूँ वह तो सिंह राज का भोजन है और सिंह राज देखो अपने उदर की पूर्ति कर ले, देखो उदर की पूर्ति करके उसका सूक्ष्म दाह हो जाएगा। उस शरीर का दाह नहीं उसके उदर का दाह हो जाएगा क्योंकि उसको इच्छा है मेरा उदर मेरी उदर की पूर्ति हो जाए।

मेरे प्यारे ! देखो माता ने जब इस प्रकार ऋषि कौटिल्य को वाक उच्चारण किए तो कौटिल्य मुनि बेटा ! आश्चर्य में चकित हो गये। उसने कहा मैं कहाँ देखो क्या उद्गीत गाऊँ। अब मैं कैसे मानो देखो आगे को शब्द को उन्होंने कहा हे पुत्री ! देखो मानो तुम्हारा ब्रह्मणे। उन्होंने कहा प्रभु मैं तो निर्मोही हूँ। मैंने तो अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। वह वास्तव में देखो यदि चला गया है, सिंह का भोजन हो गया है तो वह शरीर का ही भोजन हो गया परन्तु आत्मा किसी का भोजन नहीं होता। आत्मा स्वतः अपने मानो देखो अपने में चैतन्य है और वह चैतन्य, चैतन्य का भोजन नहीं बना करता क्योंकि जड़, जड़ का भोजन बना करता है क्योंकि भोजन भी जड़ है और वह जड़ ही मानो देखो क्षुधा में पीड़ित हो रहे हैं। केवल आत्मा के सन्निधान मात्र से वह क्रियाकलाप चल रहा है। मेरे प्यारे ! देखो कौटिल्य मुनि बड़े आश्चर्य में चकित हो गये। मेरे प्यारे ! देखो उन्होंने कहा धन्य है।

## ऋषि द्वारा पत्नि की परीक्षा

उन्होंने कहा चलो माता को भी स्नेह नहीं होता। पत्नी को स्नेह होता है, मैं पत्नी के द्वार पर चलूँ। वह पत्नी के द्वार पर पहुँचे। पत्नी ने उसी प्रकार स्वागत किया। उन्होंने कहा आईये ऋषिवर, आप तो ब्रह्मवेत्ता हैं। हमारा बड़ा अहोभाग्य है, जो आप जैसे महापुरुषों का दर्शन हुआ। उन्होंने कहा–कहो भगवन् अमृतम ब्रह्मे वरणा सुताः। उन्होंने कहा देवी तुम्हारा कोई पति है। उन्होंने कहा उच्चारण कीजिए भगवन्। उन्होंने कहा तुम्हारे पति का शव मेरे आश्रम में निहित है। आज देखो सिंह राज ने उसके दो भाग कर दिए हैं। मैं उसकी सुरक्षा करके आया हूँ। मेरी इच्छा यह है उसका दाह किया जाए, उसमें आत्मा नहीं रहा है। मेरे प्यारे ! देवी ने कहा प्रभु जब उसमें आत्मा नहीं रहा तो मैं उसका दाह करके क्या करूँगी। वह तो सिंह राज का भोजन बन गया है। सिंह राज को अपने उदर की पूर्ति करने दीजिए भगवन् ! हे भगवन !





मैं किसका दाह करूँ? क्योंकि दाह तो केवल आत्मा का ही होता है। आत्मा का आत्मा से मिलान होता है और वह उसका दाह है। वह उसका मानो देखो प्रिया वस्तुतः कहलाया जाता है। **हे भगवन् ! आत्मा की क्रिया में क्रियाशील रहना ही यही मानो देखो आत्म ज्ञान कहलाता है।** मेरे प्यारे ! उन्होंने कहा प्रभु यह मेरा पति नहीं मेरा तो पति वह प्रभु है। जब प्रभु को मैं अपना पति स्वीकार कर लेती हूँ तो यह सँसार का जो पति है यह गौण हो जाता है। हे प्रभु ! देखो अमृतम ब्रह्मा देवत्वाम्, वह अमृत है। वही तो मेरा पिता अमृत है, वही मेरा मानो स्वामी है जिसने मेरा निर्माण किया है। यदि मेरे हृदय से अग्नि मन्द हो जाये तो यह सँसार का पति मुझे अग्नि नहीं प्रदान कर सकेगा। मानो देखो वैद्यराजों के द्वारा जायेगा। वैद्यराजों से वायु देखो वह औषधियों के द्वारा प्राण शक्ति का प्रयत्न करता है। वह आये न आये यह तो मानो देखो उसकी देखो वैद्यराज की चिकित्सा के ऊपर है परन्तु पति नहीं दे सकता। जिसको मैं सँसार का पति स्वीकार कर लूँ।

हे प्रभु ! देखो यदि वायु चला जाये तो वायु नहीं देगा। परन्तु देखो मैं किसका दाह करूँ भगवन् ! अमृतम ब्रह्मा देवत्वाम् वह तो अमृत है। यह आत्मा चला गया है, चित्त के सँस्कारों को ले करके चला गया। मानो देखो मुझे स्मरण है, हे प्रभु ! कौटिल्य आप को प्रतीत है कि मैं किसकी कन्या हूँ? मैं राजम् व्रेतकेतु ऋषि की कन्या हूँ और व्रेतकेतु जो ऋषि थे वह केसे थे। वह मानो देखो जब उन्होंने अपने शरीर को त्यागा तो त्यागते समय मानो देखो उसमें आत्मा के बल से और प्राण को अमृत करते हुए मानो देखो चित्त के मण्डल में उन्होंने एक सौ चौरासी मानो देखो एक सौ चौरासी वर्ष का उनका यह अनुभव रहा है, क्या उन्होंने मानो देखो अपने जन्म-जन्मान्तरों के चित्त में जो सँस्कार हैं वह विद्यमान हैं और वह सँस्कार भोगने के योग्य हैं। हे प्रभु !

वह भोगा जायेगा इसलिए मैं मोह नहीं करती। क्योंकि मोह करूँगी तो सँस्कार बनेंगे और सँस्कार बनेंगे तो मैं मानो देखो सँस्कारित हो जाऊँगी। चित्त में सँस्कार उत्पन्न होंगे और उतना मुझे सँसार में शरीरों को धारण करना होगा और मेरा जो आने का कर्त्तव्य था मानो कि मैं चलू सँसार में पञ्च महाभूतों के लोक को प्राप्त करती हुई मुझे मानो देखो मोक्ष की पगडंडी को प्राप्त करना है। मुझे परमानन्द को प्राप्त करना है। मैं उस पथ से दूरी चली जाती हूँ तो हे प्रभु ! मैं देखो अपने में सँस्कारों को जन्म देना नहीं चाहती। मेरे महापिता ने भी इसी प्रकार मानो प्रयत्न किया है। पिता ने भी प्रयत्न किया है। उन्होंने अपने अन्तःकरण में सँस्कारों से विहिन होने का प्रयास किया है। इसी प्रकार मेरी भी यह प्रबल इच्छा बन चुकी है क्या मैं ऐसे क्रियाकलाप को, ऐसे कर्त्तव्य में लग्न हो जाऊँ जिससे मेरे अन्तःकरण में सँस्कारों की उपलब्धि न हो और सँस्कारों की उपलब्धि होगी तो जन्म-जन्मान्तरों की आभा में मैं उन सँस्कारों को भोगतव्य में प्राप्त करूँगी। हे ऋषिवर ! मेरी इच्छा यह है कि यह सँसार क्या है? यह सँसार केवल देखो अमृतम ब्रह्मा है। यह अमृत है व्रते देवत्वाम् मानो देखो यह सँसार एक दूसरे का भोजन है। एक दूसरे से भोजनतम में एक दूसरा प्राणों से प्राण का भक्षण कर रहा है। प्राण देखो प्राण रहित को प्राप्त करके अपने प्राणों की रक्षा कर रहा है देव ! तुम्हें प्रतीत है कि जब इस आत्मा, इस प्राण देखो आत्मा शरीर से निकल गया है, पञ्च प्राण चले गये हैं उस समय मानो देखो उस आहार को करता हुआ मानो देखो वह स्थूल से स्थूल की प्रबलता को प्राप्त करता रहता है।

मेरे पुत्रो ! मैं बहुत दूरी चला गया हूँ, यह बड़ा गम्भीर रहस्य है। मैं एक मानो देखो मनु राजा के राज में चला गया हूँ जहाँ बेटा ! इस प्रकार के क्रियाकलाप होते रहे हैं। मेरे प्यारे ! देखो ऋषि कौटिल्य बड़े अचुत्य बन गये। उन्होंने कहा अब मैं





क्या करूँ? मानो देखो मुझे मैं ही यह अमृतम, मैं अशान्त हो गया हूँ। मैं कहीं-कहीं से, मुझे संतोष भी प्राप्त हो गया है। परन्तु देखो कौटिल्य मुनि ने विचारा क्या देखो मैं भगिनी, पत्नी को भी इतना स्नेह नहीं होता चलो भौजई के द्वारा चलते हैं।

## कौटिल्य ऋषि का भौजई से विचार-विनिमय

वह भौजई के द्वार पर पहुँचे। मेरे प्यारे ! देखो वह भोजम् ब्रह्मणा व्रतम देवत्वम् उन्होंने उनका स्वागत किया। उन्होंने कहा आईये ऋषिवर, विराजिये। वह ऋषिवर विराजमान हो गये। उन्होंने कहा कहो ऋषिवर आप मेरे अतिथिपने को स्वीकार कीजिए। आप मेरे अतिथि हैं। कुछ आप मुझे उपदेश दीजिए और कुछ मानो जल पान कीजिए। उन्होंने कहा हे पुत्री ! मुझे जल पान की इच्छा नहीं है। और क्या है? मुझे उच्चारण करना है। उन्होंने कहा कहो–कि तुम्हारा कोई विधाता है वह विधाता मेरे आश्रम में पहुँचा है। मृगराज ने भयँकर वन में उसके दो भाग कर दिए हैं और दो भाग करने से ब्रह्मणम् ब्राहा हे देवत्वम्, हे पुत्री ! उसके दो भाग कर दिए। मैं चाहता हूँ उसका दाह किया जाए, विधिवत से दाह करें। तो उस समय वह बोली हे देव आपम ब्रह्मे आप मुझे देखो सँसार में इस आत्मा का न तो कोई माता होता है और न कोई पिता होता है न विधाता होता है न यह ऋण बन्धी सँसार होता है। यह आत्मा तो मानो अखण्ड रहने वाली एक अमूल्य ज्योति है जो ज्योति शरीर को ज्योतिवान बनाए रहती है। जिसको मोह ममता से वह रहित होती है। इसलिए आत्मा जब चित के मण्डल से जाता है तो मानो देखो अपने सँस्कारों को ले करके इस शरीर को त्याग देता है। यह प्राणों की आभा में वायुमण्डल में गमन करता रहता है और गमन करता हुआ मानो देखो आत्मनाम् भूतम् ब्रह्मणे यह आत्मा मानो देखो अखण्ड रहने वाली ज्योति है और अवरित यह आत्मा ही मानो देखो अव्रत कहलाती है। आत्मा न किसी का

विधाता होता है और न आत्मा किसी की भोजई होती है। यह आत्मा तो मानो देखो शरीर की नाना प्रकार की उपाधियों से यह अलँकृत किया हुआ जगत है। हे देव ! यह मानो देखो एक दूसरे की आभा से अलँकृत हो रहा है। मेरे प्यारे ! देखो वह कौटिल्य बड़े आश्चर्य में हुए। उन्होंने कहा प्रभु मैं यह चाहती रहती हूँ कि मैं सँसार में आई हूँ तो देखो हम अपनी आत्मा आत्म ब्रह्मणे देखो मैं आत्मा मैं महम् आत्मा हूँ, मैं आत्म तत्त्व हूँ और मैं चेतना में बद्ध रहने वाला हूँ परन्तु देखो यद्यपि मोह से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। जब उन्होंने इस प्रकार उद्गीत गाया तो राजा मुनिवरो ! देखो वह राजर्षि बड़े आश्चर्य में चकित हो गये। वह ब्रह्मर्षि भी थे, राजर्षि भी थे। मेरे प्यारे ! देखो उन्होंने सब देखो कुटुम्ब को त्याग दिया। त्याग करके उन्होंने विचारा कि वह प्रजा तो है।

## कौटिल्य ऋषि द्वारा प्रजा का आह्वान

उन्होंने बेटा ! देखो प्रजा, उसके राष्ट्र की प्रजा को एकत्रित किया क्या कौटिल्य मुनि ने आह्वान किया है। आओ, सब एकत्रित हो जाओ। उन्होंने जैसे ही घोषणा की उसी घोषणा के आधार पर मानो देखो प्रजा एकत्रित हो गई। जब प्रजा एकत्रित हो गई तो प्रजा के मध्य में एक मानो स्थान लग गया। ऊँचा एक मचान लग गया उस पर ऋषि आगमन, ऋषि का आगमन उस पर विराजमान हो गये और विराजमान हो जाने के पश्चात प्रजा ने नत-मस्तिक हो करके कहा कहो ऋषिवर हम प्रजाओं को केसे एकत्रित किया है। आप तो महापुरुष हैं क्योंकि **ऋषि जो होता है वह राजाओं का भी राजा कहलाता है।** आप तो हमारे महाराजा है। हे भगवन् ! आपने कैसे घोषित किया। उन्होंने कहा, वह ऋषि कौटिल्य बोले कि भई मेरी इच्छा यह है कि मैं आप से कुछ प्रार्थी हूँ, प्रार्थी बनना चाहता हूँ। उन्होंने कहा प्रार्थी नहीं अपना आदेश दीजिए। उन्होंने कहा तो भगवन् मेरे आश्रम में यह जो तुम्हारा वर्तमान का राजा है, इस राजा का एक पुत्र है। वह मानो भ्रमण करने गया





तो उन्होंने, सिंह राज ने उसके दो भाग कर दिये हैं और वह सिंह राज मेरे आश्रम में मैंने सिंह राज से शव की रक्षा की है। उसमें आत्मा नहीं है। प्राण चला गया है। मन नहीं रहा है। केवल देखो उसमें अवृति प्राण रह गया है। हे भगवन् मेरी इच्छा यह है क्या उसका विधिवत साकल्य के द्वारा, चरू के द्वारा वेद-मन्त्रों का उद्गीत गाते उसका स्वाहा कहते उसका दाह कर दिया जाए। अग्नि में दाह किया जाए जैसे राष्ट्रीय पुरुषों का होता है या साधारण पुरुषों का होता है। वह उसका, देखो सिंह राज का भोजन न बनें। मेरे प्यारे ! देखो प्रजा ने कहा भगवन् और कुछ उच्चारण करना हो। ऋषि ने कहा नहीं, मुझे कोई वाक् उच्चारण करना नहीं है। मुझे अपना कोई स्वार्थ नहीं है। केवल मेरी इच्छा यह है कि राजा का, राजकुमार का दाह हो जाना चाहिए और जब दाह हो जाएगा तो मानो देखो मेरी यात्रा सफल हो जाएगी।

मेरे प्यारे ! देखो उसमें से एक व्रेतकेतु चण्डी ने कहा क्या हे ऋषिवर ! आप कौन सी यात्रा को ले करके अपने आश्रम को त्यागा है। उन्होंने कहा मैंने यह यात्रा इसलिए की है कि मैं एक शव को ले करके इसका दाह कराना चाहता हूँ। उन्होंने कहा यह यात्रा नहीं होती ऋषिवर ! इसको यात्रा नहीं होती। यह तो ऐसा है क्या इसका दाह करने के लिए, हम दाह क्योंकि शरीरों का कोई मानव दाह नहीं कर सकता। कोई भी मानव शरीरों का दाह– क्योंकि जिसका दाह करना चाहता है वह उसके शरीर में विद्यमान रहती है वही वस्तु। उन वस्तुओं का दाह क्या करेगा, वह तो जड़ देवता कहलाते हैं। जैसे अग्नि है वह जड़ देवता है। जैसे जल है वह जड़ देवता है। पृथ्वी है वह जड़ देवता है। इसी प्रकार मानो वायु जड़ देवता है और अन्तरिक्ष भी जड़ देवता है। अब देवता देवता की रक्षा कैसे करेगा? क्योंकि देखो इस मानव के शरीर में आत्मा से चेतन रहता है और आत्मा उसका चला गया है परन्तु देखो हम उसका दाह क्या कर सकते हैं।

अब ऋषि का तो ब्रह्माण्ड बेटा ! अवरत हो गया। उसका ब्राह्मण्ड देखो मस्तिष्क के तन्तु मानो देखो अव्रतु कम्पन्न करने लगे। उन्होंने कहा मैं तो ऐसा हो गया जैसे मेरी मृत्यु न हो जाए, यह मेरा शरीर ही न चला जाए। मानो देखो मैं इन विचारों को कहाँ तक एकत्रित करता रहूँगा। मेरे प्यारे ! देखो कौटिल्य ऋषि से देखो वह प्रजा के एक निधित्व ने कहा हे ऋषिवर ! तुम्हें यह प्रतीत है कि हम दाह किसी का करने के सुयोग्य नहीं होते। मानो देखो उन्होंने कहा जो पितृ-याग करते हैं। उन्होंने कहा यह एक मानव समाज को बन्धन में लाने के लिए मानव ने देखो पितृ-याग, मातृ-याग और देखो उन्होंने आचार्य देवो भव यह बनाया है जिसमें देखो सँसार की मर्यादा और सँसार मानो देखो मर्यादा में भिन्न हो करके अपने शुद्ध क्रियाकलापों को करता रहे। यह इसलिए नहीं की दाह, दाह यह अन्तिम विचार है क्योंकि यह दाह अमृतम कहलाता है। हम किसी का दाह नहीं कर सकते। मेरे प्यारे ! देखो कौटिल्य ऋषि ने कहा तो क्या हे प्रजाओं क्या तुम देखो उसकी रक्षा भूतम् ब्रह्मा। उन्होंने कहा कि कोई किसी का रक्षक है - परमपिता परमात्मा सब का रक्षक होता है। वह देव कहलाता है परन्तु देखो वह अग्नि देता है, वायु देता है और उसमें विद्यमान रहता है। परन्तु देखो बिना उसके वायु अपने प्राणों का विभाजन नहीं कर सकती क्योंकि जब आत्मा के सन्निधान में जाते हैं परमात्मा वहाँ विद्यमान होता है। तो उन तत्त्वों का विभाजन हो जाता है और यह क्योंकि प्राण एक ही वायु, वायु विद्यमान है। उस वायु के दस भाग बनते हैं-प्राण, अपान, उदान के रूप में जैसे प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, नाग, देवदत्त, धनञ्जय, कुरु, कृकल मानो देखो इस प्रकार दस भाग वायु के बन जाते हैं। उनको प्राण कहते हैं, उनको कोई रुद्र कहता है। रुद्र इसलिए क्योंकि वह रुलाने वाले हैं। वह नहीं रहेंगे तो देखो रूलाते रहेंगे, वह रुद्र कहलाते हैं। इसी प्रकार वह प्राण कहलाते हैं क्योंकि उससे सत्ता प्रारम्भ





होती है, उससे मानव की शक्ति का सँचार होता है। मानो देखो आत्मा उस गृह में स्थिर हो जाता है। आत्मा के सन्निधान मात्र से वायु मानो देखो प्राण चरे रेति चरे रेति गति करने लगते हैं।

## ब्रह्मज्ञानियों का उपदेश

मेरे पुत्रो ! देखो जब उन्होंने, इस प्रकार प्रजा ने कहा तो ऋषिवर आश्चर्य में हो गये। मेरे पुत्रो ! देखो उन्होंने कहा ब्रह्मणे ब्राहा, हमें दाह करने का हमें कोई अधिकार नहीं क्योंकि दाह तो स्वतः हुआ हुआ है। यह प्राकृतिक दाह हो जाता है। जब शरीर में से आत्मा चला गया तो प्राण चले गये। और देखो उसमें से अग्नि दाह हो गया है। वह किसका दाह जब सब चले गये। देवता अपने-अपने स्थान को वास कर गये हैं। वह केवल देखो एक देवता का वह भाग रह गया पृथ्वी का वह उसे अपने में मिश्रित कर लेता है। तो हे कौटिल्य ऋषि ! यही तो ब्रह्मज्ञानियों का एक उपदेश है और यह उपदेश यही कहता है कि सँसार में दाह प्राणम् ब्रहे देवत्वाम्। **यह ब्रह्मज्ञान है और ब्रह्मज्ञानी जो है वह सँसार में जीवित रहता है।** ब्रह्मज्ञानी की मृत्यु नहीं होती इसलिए देखो मृत्यु का प्रसंग आपने जो लिया है यह व्यर्थ में ले लिया है।

## कौटिल्य ऋषि द्वारा धन्यवाद और अनुभव

कौटिल्य मुनि बेटा ! अपने में मौन हो गये और कौटिल्य ने कहा कि प्रभु आप, हे प्रजाओं मैं तो एक यात्रा करने क्या चला हूँ मैं तो ब्रह्मज्ञान में, ब्रह्मज्ञानियों की सभा में चला गया हूँ। मुझे तो एक से एक ब्रह्मज्ञानी तुम में प्राप्त हो गया है। मैं अपने को मानो देखो अपने को धन्य स्वीकार करता हूँ। मेरे प्यारे ! देखो वह धन्यवाद देते हुए और वहाँ से उन्होंने गमन किया और भ्रमण करते बेटा ! अपने आश्रम में पहुँचे।

कौटिल्य मुनि जैसे आश्रम में पहुँचे उस ब्रह्मचारी ने देखो ऋषि के चरणों को स्पर्श किया। उन्होंने कहा कहिए भगवन्, ऋषिवर तुमने क्या अनुभव किया? उन्होंने कहा हे ब्रह्मचारी मैं अनुभव क्या कर रहा हूँ, मैं तो ब्रह्मवेत्ताओं की सभाओं में चला गया हूँ। राजा के यहाँ चला गया तो राजसभा में नहीं गया, मैं ब्रह्मवेत्ताओं की सभा में चला गया। एक ब्रह्मज्ञानी, विवेकी राजा के द्वार पर चला गया। माता के द्वार पर गया तो ममता का वहाँ मानो किन्चित एक अब्रहो नहीं था। केवल एक देवत्त्व का मुझे दर्शन हो रहा था। जब मैं मानो देखो भौजई के द्वारा गया तो वहाँ देवी का दर्शन भी नहीं वहाँ मुझे एक ब्रह्मज्ञान तत्त्व का मुझे दर्शन प्राप्त हुआ। जब मैं पत्नी के द्वार पर पहुँचा जिसे पत्नी स्वीकार कर रहा था। उसने अपने प्रभु को अपना पति स्वीकार कर लिया था वह मानो देखो मुझे लक्ष्मी और विष्णु के तुल्य मुझे दृष्टिपात आने लगी।

## राजकुमार व्रतु का तप

मेरे प्यारे ! देखो महात्मा कौटिल्य मुनि ने जब यह कहा तो उन्होंने कहा कि प्रभु मेरा जीवन इस गृह में मेरा जन्म सफल हो गया है। आज जो मानो देखो मैं विवेकी अमृतम ब्रह्मा मैं अमृत को प्राप्त करता रहता हूँ। मेरे प्यारे ! देखो वही उन्होंने बारह वर्ष की तपस्या का ब्रह्मचारी ने अपने में देखो सँकल्प कर लिया और बारह वर्ष तक वह इन्द्रियों पर जय करते हुए मेरे प्यारे ! देखो कौटिल्य मुनि के आश्रम में सेवा करते रहे। उसके पश्चात् वह राजसभा में पहुँचे। मेरे प्यारे ! देखो राजनम्ं ब्राहा क्रतम् देवाः बारह वर्ष तपस्या करने के पश्चात् मुनिवरो ! देखो उसके एक पुत्र हुआ और पुत्र के होते राजा ने कहा हे ब्रह्मचारी आओ तुम राष्ट्र को अपनाओ और मैं अब देखो भयँकर वन में ब्रह्मज्ञानी बनने के लिए, ब्रह्म की जिज्ञासा के लिए मैं अपनी मोक्ष की पगडंडी को





ग्रहण करना चाहता हूँ। मेरे पुत्रो ! देखो वह भगवान् मनु देखो मनु वंश में देखो राजा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज दे करके और वह भयँकर वन को चले गये।

तो मेरे प्यारे ! देखो **आज हमारे वाक उच्चारण करने का अभिप्राय क्या, क्या मानव को सँसार में निर्मोही रहना चाहिए** और देखो राजा का पुत्र और एक मानो देखो पक्षी भी उसके लिए एक तुल्य होता है। जब इस प्रकार का राजा होता है तो उस राजा के राष्ट्र में अहिंसा परमोधरम की प्रतिभा होती है और उस राजा के राष्ट्र में मानो देखो कोई उसका शत्रु नहीं होता और कोई मानो देखो उसका घनिष्ठ मित्र नहीं होता। **सब अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहते हैं और कर्त्तव्यवाद ही मुनिवरो ! देखो धर्म है। वही शाश्वत धर्म कहा जाता है** और जो कर्त्तव्यवाद को भी धर्म विहिन कहने लगता है तो मानो देखो वह कर्त्तव्यवाद को नहीं जानता। तो यह है बेटा ! आज का वाक्। आज के वाक् उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय क्या है। आज बेटा ! मैं बहुत परम्परा के साहित्य में चला गया। आज मैं उस साहित्य में चला गया जहाँ भगवान् मनु का जिस काल में देखो राष्ट्र देखो इस पृथ्वी पर ब्रह्माण्ड पे मानो देखो राष्ट्र की प्रतिभा का जन्म होता रहा। तो मेरे प्यारे ! राजा जब अपने में न्याय करता है तो वह न्याय करता हुआ मानो देखो राज और अपना पुत्र एक ही तुल्य होता है। इसी प्रकार देखो जब प्रजा और राजा इस प्रकार बन जाते हैं तो राष्ट्र में स्वर्ण की स्थापना हो जाती है। यह है बेटा ! आज का वाक्। अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएँ कल प्रगट करेंगे। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन।

**दिनांक : 22 अगस्त, 1992**
**स्थान : ग्राम काकड़ा,**
**गाजियाबाद**

॥ ओ३म् ॥

# भौतिक और आध्यात्मिक कार्य

हम तो यह कहते हैं कि जब आज का मानव प्रातः समय से सायँ समय तक उदर-पूर्ति का प्रयत्न करता है तो जो आत्मा तुम्हारे शरीर में विराजमान है उसके भोजन का भी (प्रबन्ध) करो। उसका भोजन सत्संग करना है। उसका भोजन वेद के वाक्यों को पाना (अध्ययन) है। उसका भोजन उस परमात्मा का विचार करना है। यही परमात्मा को भी भोजन देना है। मुनिवरो ! जैसे आज का मानव अपने उदर की पूर्ति करने का प्रयत्न करता है वैसे ही आत्मा को भोजन देने का प्रयत्न करें। आत्मा का भोजन ज्ञान है। हमारा यह आज का आदेश है।

हमें भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार का कर्म करना चाहिए। तभी हमारे जीवन का विकास बहुत सूक्ष्म समय में हो जायेगा। प्रश्न होता है कि यह सम्भव कैसे है कि उदर पूर्ति भी कर लेवें और आध्यात्मिक विज्ञान को भी पा लें। यह दो प्रकार की स्थिति हम कैसे पालें।

**मुनिवरो ! इस जीवन के भाग बना करके संसार में चलो देखो ! एक अलंकार हमारे कंठ आ गया।**

मुनिवरो ! एक वैश्य कृषक था। वैश्य कृषि किया करते थे। वसन्त ऋतु में उस कृषक की कृषि लहलहा उठी। उस कृषक के क्षेत्र की ओर एक क्षत्रिय, एक ब्राह्मण और एक दरिद्र तीनों आ निकले। उन्होंने परिपक्व कृषि को देखकर उसी में से तीनों ने खाना आरम्भ कर दिया। उसी समय कृषक भी आ पहुँचा। उसने तीन व्यक्तियों को देखकर सोचा कि अब क्या करना चाहिए? क्योंकि ये तो तीन हैं और मैं अकेला हूँ। अब बुद्धि से विचार कर कार्य करना चाहिए। उसने उस समय ब्राह्मण के चरणों को स्पर्श किया, और कहा कि





महाराज आप तो हमारे हर प्रकार के पूज्य हैं। आप तो देवता हैं। आप तो ब्रह्मा को जानने वाले हैं। (ऐसी) प्रशंसा करके क्षत्रिय से कहा महाराज आप तो हमारी रक्षा करने वाले हैं, हर प्रकार रक्षा करते हैं। आप तो हमारे राजधिकारी हैं। उसकी प्रशंसा करके कहा कि महाराज यह आप के साथ क्षुद्र (दरिद्री) या (तुच्छ) कौन है।

उस समय ब्राह्मण ने कहा (कि) ''भाई ! हमने तो इससे कहा था कि तू हमारे संग न चल।'' तब उन दोनों ने उसको त्याग दिया। तब उस कृषक ने उस पर आक्रमण करके उसको भगा दिया। फिर वह ब्राह्मण के समक्ष पहुँचा। ब्राह्मण से कहा कि आप तो हमारे देवता हैं पर देखिए तो यह क्षत्रिय हमें बड़े-बड़े कष्ट देता है। यह आपके समक्ष क्यों आ गया? अब ब्राह्मण ने सोचा कि ''भाई, तुम्हें तो यह दक्षिणा भी देगा, तो अब क्या करना चाहिए।'' ब्राह्मण ने (कृषक से) कहा ''भाई ! मैंने तो मना किया था। तुम हमारे संग न चलो।'' इत्यादि। तब उस कृषक ने क्षत्रिय पर भी आक्रमण कर दिया। आक्रमण के (कारण) क्षत्रिय भी वहाँ से चला गया। अब (केवल) ब्राह्मण जी रह गए। उनको भी कृषक ने कहा कि जब आप द्वार पर आते हैं न जाने क्या-क्या पाप-भय दिखा कर अपना भाग आवश्यकता से भी अधिक अनुचित रूप से लेकर ही पिंड छोड़ते हैं। इसलिए हम तो आप पर भी आक्रमण करेंगे। यह कह कर ब्राह्मण पर भी आक्रमण कर दिया। वहाँ से ब्राह्मण भी भाग गया।

मुनिवरो ! इन वाक्यों का क्या अभिप्राय है? मानव को अपने जीवन के भाग बना देने चाहिएँ। हमारे जीवन के तीन भाग हैं। बुद्धि से कार्य करो। यदि वैश्य बुद्धि से कार्य न करता तो वे तीनों ही उसको समाप्त कर देते। यदि अपने जीवन को सुखी बनाना है तो अपने जीवन के विभाग कर देने चाहिएँ। कैसे विभाग?

मुनिवरो ! एक महान् राजा मन्त्रियों सहित भ्रमण कर रहे थे। उन्होंने वन से समिधाएं लाकर गृहस्थियों के गृहों पर पहुँचाने वाले

एक दरिद्र व्यक्ति को, जो कि मार्ग में मग्न भाव से उच्च स्वरों के साथ गान गा रहा था, को देखा। वह ऐसा गान गा रहा था कि जैसे ऋषिजन वेदों का 'घन-पाठ' में गायन करते हों। उसके गायन पर तो पक्षीगण भी मुग्ध हो रहे थे। उस समय राजा ने मन्त्रियों से कहा, अरे ! भाई ! यह क्या है? यह कैसा मुग्ध हुआ गान गा रहा है? यह कितना सुखी होगा? जैसा कि हमने (गुरु जी ने) कल उच्चारण किया था कि ऐसा गान तो पवित्र मन वाला व्यक्ति ही गाता है। और वही गा सकता है कि जो सुखी होता है। जो सुखी नहीं, जो कलह में मग्न हो वह ऐसा गान कदापि नहीं गा सकता।

तो मुनिवरो ! राजा ने उससे कहा कि ''अरे ! भाई ! तुम तो बड़ा सुन्दर गान गा रहे हो?''

उसने उत्तर दिया कि ''गान गाना मेरा कर्त्तव्य है इसलिए मैं गा रहा हूँ।''

अरे ! तुझे ऐसी क्या मस्ती है? (गायक व्यक्ति ने उत्तर दिया) कि ''मुझे इतनी मस्ती है कि इतनी मस्ती तो राजा को भी कदापि नहीं हो सकती।''

राजा ने पूछा, ''भाई ! यह क्या बात है?'' उस समय गायक ने कहा कि ''महाराज ! देखो मैं द्रव्य कमाता हूँ। जो द्रव्य मैं प्रातःकाल से साँयकाल तक कमाता हूँ, उसके चार भाग बना देता हूँ। उसमें से एक भाग तो उनको देता हूँ कि जिनसे मैंने लिया हुआ है। दूसरा भाग उनको देता हूँ कि जिनसे आगे चल कर मेरे कार्य में सहायता मिलेगी। या जो इस लोक और परलोक दोनों में मिलेगा। तृतीय भाग दूसरों को देता हूँ। और चतुर्थ भाग अपने लिए रख लेता हूँ। अर्थात् अपने पर व्यय करता हूँ। इस चतुर्थ भाग में मैं मेरी पत्नी आनन्द मनाते हैं।

राजा ने कहा कि 'भाई ! ये चार भाग अपने द्रव्य के कैसे बनाते हो, वे कैसे-कैसे व्यय होते हैं? (यह स्पष्ट करके कहो)





उस समय (गायक) ने कहा कि महाराज ! मैं दिन भर में जितना भी कमाता हूँ उसके चार भाग कर देता हूँ।

एक भाग तो मैं उन्हें देता हूँ जिनसे मैंने लिया है। वे कौन हैं? वे मेरे माता पिता हैं। जिन्होंने मेरी पालना की, मेरी माता ने मुझे गर्भ स्थल में धारण किया, मुझे योग्य बनाया। मुझ को पाल कर उच्च बनाया। मैं उनको एक भाग देता हूँ।

दूसरा भाग वेदों के विद्वान, वेदों का प्रचार करने वाले विद्वान, सदाचारी ब्राह्मणों, अतिथियों और महान् योगियों की सेवा में लगा देता हूँ या उनको दान कर देता हूँ। यह द्रव्य मुझको परलोक में प्राप्त हो जायेगा।

तीसरा भाग मैं संसार के व्यक्तियों को देता हूँ। जब मुझको अधिक द्रव्य की आवश्यकता पड़ती है तब मैं उनसे ले लेता हूँ।

चतुर्थ भाग में मैं और मेरी पत्नी दोनों आनन्द से रहते हैं। तब मैं इतना सुखी हूँ। इसी कारण मैं इस प्रकार का गान गा रहा हूँ। यदि मैं सुखी न होता तो आज मार्ग में ऐसा गान कदापि न गा सकता।

तो मुनिवरो ! इसलिए मानव को अपने जीवन के चार भाग बना देने चाहिये। तभी हम दोनों (आध्यात्मिक और भौतिक) कार्य कर सकते हैं। देखो, आध्यात्मिक विज्ञान भी पा सकते हैं और भौतिक विज्ञान भी पा सकते हैं। दोनों विज्ञान को पाने वाले तभी बनेंगे जब बुद्धि से कार्य करेंगे। महान् देखो, जब नष्ट करने वाले अनिष्ट कार्य करेंगे तो वास्तव में ही हमारा जीवन समाप्त हो जायेगा। हम इस संसार में आकर कोई भी लाभ प्राप्त न कर सकेंगे। इसलिए बेटा ! यह आज का हमारा आदेश है।

धन्य हो भगवन् !

**पूज्यपाद-गुरुदेव**

॥ ओ३म् ॥

# माता का स्वरूप

मुनिवरो ! आज के वेद पाठ में माताओं के विषय में बड़ा सुन्दर वर्णन आ रहा था। यह एक मधु एवम् सूक्ष्म उपदेश है। देखो ! माता प्रकृति को कहते हैं। यह सारी प्रकृति और जीव उस माता दुर्गा अर्थात् प्रभु के गर्भस्थल में रहते हैं। जैसे माताओं की माता दुर्गा (परमात्मा) हमारे जीवन को उच्च बनाती है। वैसे ही हमारी जननी माता भी हमारे जीवन को उच्च बनाने वाली है। वास्तव में जननी माता वह ही हो सकती है जो परमात्मा के समान अपने पुत्रों का कल्याण करके उच्च पद पर पहुँचाने वाली हो। जो संसार सागर में ऊँची प्रेरणा देने वाली हो। वह माता कैसी हो? जो गर्भस्थल में ही वर्तमान आत्मा को ऊँची शिक्षा प्रदान करने वाली हो। ऐसा हमने द्वापर युग में पाया था। प्रत्यक्ष किया था। मुनिवरो ! इस विषय में महानन्द जी ने नाना प्रश्न किये इनके समाधान में हमारी द्वापर की एक देखी हुई घटना है।

द्वापर में महाराजा गंगेतु राजा की गंगोत्री (गँगा) नामक सुन्दर कन्या थी। उसका विवाह संस्कार राजा शान्तनु के साथ हुआ था। वे आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे। राजा शान्तनु के गंगोत्री से सात पुत्र उत्पन्न होकर, सब के सब समाप्त होते गए। महाराजा शान्तनु को बड़ी चिन्ता हुई। क्योंकि उनके राष्ट्र का (राज्य का) सम्भालने वाला कोई न रहा। कुछ काल पश्चात् बड़ा सुन्दर आठवाँ बालक उत्पन्न हुआ। मुनिवरो ! बाल्यावस्था





में ब्राह्मणों ने उसका नाम 'गंगशील' नियुक्त किया। गंगशील बाल्यावस्था से ही बड़ा चतुर बड़ा तेजस्वी था। राजा शान्तनु के कुल पुरोहित एवं राष्ट्र पुरोहित महर्षि पारामुनि के गृह पर मुनि से शिक्षा पाने लगा। बालक की तीव्र बुद्धि, उसके शील से पारामुनि बहुत प्रसन्न थे। पारा मुनि गंगशील को कौडली ब्रह्मचारी कहने लगे। यह नाम उन्होंने इसलिए रखा था कि वे आत्मा के विषय में अत्यधिक परिश्रम किया करते थे। ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करते थे।

कुछ समय पश्चात् माता गंगोत्री का स्वर्गवास होने लगा। मृत्यु समय राजा शान्तनु और कौडली ब्रह्मचारी उपस्थित थे। माता ने पुत्र से कहा कि "इस समय मेरे अन्तिम सांस चल रहे हैं। मेरा जीवन समाप्त होने वाला है। परलोक को जाने वाली हूँ।" मेरा आदेश है कि "जब तक तू जीवित रहे तू अखंड ब्रह्मचर्य का पालन करना। जिससे कि तुझे मृत्यु (काल) छू भी न सके। अपनी इच्छानुसार शरीर को त्यागने वाला बनना। तूने मेरे गर्भ से जन्म धारण किया है। मेरा गर्भाशय तभी उज्ज्वल होगा जब तू महान् ब्रह्मचारी बनकर के अपने जीवन को हर प्रकार से उच्च बनाएगा।

आज देखो यदि हम अपने जीवन को, अपने समाज को, अपने राष्ट्र को उच्च बनाना चाहते हैं तो हमारी माताओं को भी गंगोत्री माता के समान बनना होगा। आज की माताओं को भी गंगोत्री के समान गर्भ से ही अपने पुत्रों एवं पुत्रियों को ब्रह्मचर्य की शिक्षा देने वाली होनी चाहिए।

**पूज्यपाद-गुरुदेव**

॥ ओ३म् ॥

# माता गंगोत्री का पति को आदेश

मुनिवरो ! उसने अपने पतिदेव से कहा है कि हे पतिदेव ! मेरा मृत्यु काल आ रहा है। मेरे कुछ ही साँस रह रहे हैं। मैं इस समय परलोक को जा रही हूँ। हे भगवन् ! आप मेरे स्वामी हैं। यह मेरा एक बालक है। परमात्मा की दया से न जाने कहाँ-कहाँ से और कैसे हम तीनों का सम्बन्ध बन गया है। यह मिलाप हो गया है। आप राजा बन गए। मैं आपकी धर्म देवी बन गई। हम तीनों के मेल का, सनमंत (मनमत्त) होने का इतना ही काल परमात्मा ने दिया था। अब मुझे आज्ञा दीजिए मैं परलोक को जा रही हूँ।

अच्छा भगवन् ! मेरा एक आदेश है। वास्तव में तो पत्नी अपने पति को क्या आदेश दे। पर शुभ आदेश देने में कोई किसी प्रकार की हानि नहीं है। उस समय मुनिवरो ! देखो, उसने मृत्यु काल में यह क्या कहा था कि "हे पति देव ! यदि आपको देखो, सँसार की इच्छा जागृत हो जाएँ तो आप द्वितीय संस्कार (विवाह) करा लेना। परन्तु यदि आपने संस्कार न कराया और कुविचार आपके बन गए और आपने राष्ट्र के किसी व्यक्ति को, किसी भी देव कन्या को किसी भी मधुमती को किसी भी प्रकार से भ्रष्ट कर दिया तो भगवन् ! यह राज आज नहीं तो कल अवश्य नष्ट हो जाएगा।"

तो मुनिवरो ! उस महान् माता गंगोत्री ने अपने पतिदेव से कहा कि "आप भ्रष्ट न हो जाना। भगवन् ! यदि आप अपने





मार्ग से भ्रष्ट हुए तो इस संसार की मृत्यु हो जाएगी। राष्ट्र समाप्त हो जाएगा। हे विधाता ! आपको परमात्मा ने पूर्व जन्म के उच्च कर्मों के आधार पर इतने बड़े साम्राज्य का आज राजा बनाया हुआ है। प्रजा ने आपको राजा के पद पर चुना है, तो आप भी प्रजा को भ्रष्ट न करना। भगवन् ! यदि आपके भ्रष्टाचार के कारण प्रजा में भ्रष्टाचार फैल गया तो यह आपका राज पद नहीं रहेगा। आपका राज पद दूषित हो जायेगा।" भगवन् ! मृत्यु समय मेरा केवल यही आदेश है। आपके समक्ष यही अनुरोध है। आप मेरे इस अनुरोध को अवश्य स्वीकार करें।

"भगवन् ! परमात्मा की कृपा से जनता ने आपके चरित्र को स्वच्छ-निर्मल समझकर आपको राजा के पद के लिए चुना है। आपको राजाधिराज बनाया है। यदि आप अन्तिम काल में राज्य को त्यागना चाहें तो जैसा परमात्मा ने स्वच्छ और निर्मल राज्य दिया है वैसे ही परमात्मा के समक्ष अर्पण कर देना है।" "हे भगवन् ! यदि आपने अपने रहते-रहते अपने राष्ट्र को अपने चरित्र दोष से दूषित कर दिया, परमात्मा को दूषित राज्य अर्पण किया, स्वयँ चरित्र से दूषित हो जाए तो आप राजा नहीं रहेंगे, आप कीड़े के तुल्य बन जायेंगे।"

मुनिवरो ! देखो, यह उन महान् देवियों का आदेश है, पर आज उन माताओं को कहाँ से लाएँ? इस काल में उन्हें कहाँ से खोजें? जो मुनिवरो ! अपने पतियों को इतना सुन्दर आदेश देने वाली हों।

आज हमारा यह आदेश चल रहा है कि "आज मानव को परमात्मा ने जो स्वच्छ पदार्थ कर्म करने के लिए दिए हैं, परमात्मा

ने जैसा स्वच्छ निर्मल जीवन दिया है, हमारा परमधर्म है कि परमात्मा को वैसा ही स्वच्छ एवम् निर्मल जीवन और पदार्थ अर्पण कर दें। तभी हमारी मानवता है, मानवता की सफलता है। अन्यथा इस मानवता की कोई विशेषता नहीं है, कोई महत्त्व नहीं है।''

मुनिवरो ! माता गंगोत्री ने ऐसा आदेश देकर नमस्कार करके अपने प्राणों को त्याग दिया। मुनिवरो ! राजा शान्तनु ने बड़े आनन्द पूर्वक नाना उत्तम सामग्री संचित करके नाना ब्राह्मणों के द्वारा विधि पूर्वक यज्ञकुण्ड में अपनी धर्म पत्नी का अन्त्येष्टि संस्कार वेदमन्त्रों के पाठ करके किया। उस विद्वान ब्रह्मचारी ने भी अपनी माता के अन्त्येष्टि संस्कार में वेदमंत्रों का पाठ किया। राजा शान्तनु बड़े आनन्द से जीवन व्यतीत करने लगे। राजा शान्तनु के जीवन की शेष विशेषताएँ कल उच्चारण करेंगे। आज तो हमें इतना ही आदेश मिला। कल महानन्द जी के शेष प्रश्नों का समाधान भी करेंगे। क्योंकि आज समय नहीं रहा है।

मुनिवरो ! आज हम अपने व्याख्यान में द्वापर युग का प्रमाण देकर आदेश दे रहे थे। परमात्मा की कृपा से उन महान् ब्रह्मचारियों ने उन महान् आचार्यों ने और उन महान् देवियों ने ऐसी उच्च शिक्षा देकर राज्य को उच्च बनाया था। मुनिवरो ! यदि राज्य को उच्च बनाना है और संसार को उच्च बनाना है। संस्कृति का प्रसार करना है तो शिष्टाचार को उच्च बनाना होगा। विद्या का प्रचार और प्रसार करना है तो शिष्टाचार को उच्च बनाना होगा। जिस काल में ब्रह्मचारी होते हैं वही काल सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

**पूज्यपाद-गुरुदेव**





## Spiritual Lights

**[Contd.]**

Once Mahananda ji tried to know from me about Vedic knowledge and how it was revealed to Mankind. I replied that it was aquired from 'Anahadnada' This 'Nada' (Vibrations) resonated in Brahamrandra (cavity in the skull). When the 'Hirdya' (heart) and 'Brahamrandra' come into contact with each other, the 'Gyan' and 'Karma' Indriyas (Organs of Perception and Action) give rise to resplendent vibrations. When these vibrations come in contact with 'Brahamrandra' a plexus in the 'Brahamrandra' comes into operation whose effulgence exceeds the brilliance of a thousand Suns. When this light operates in cyclic order numerous sounds originate and it spreads far and wide in cosmos which includes the "Deva Loka" and the sounds pervading the' Deva Loka' Constitute the' Anhadnada', When a Yogi fully understands these sounds and commits them to writing these very sounds give rise to Grammar. 0 Sages ! I will remember the words of my Guru that voices of millions of years are still present in the 'Diu Loka', which the yogi hears through yoga.

O Saqes ! Veda means knowledge, not books. The Vedic lore is as commonplace as the light in the universe which purifies man's' Antakarna' (inner instrument) And the purified 'Antakarna' grasps 'Anhadnada' and it is from 'Anhadnada' that 'Gayatri Chhanda' comes into being. O Sages ! Gayatri means a song which is sung through Brahamrandra. We have to understand these vibrations. Just as the external world is connected with the physical body through the mind, the mind is connected with the intellect and the intellect is linked with the 'Hirdya' (Heart) and the 'Hirdya' is connected with 'Brahamrandra' and Brahamrandra is connected with the cosmos. Voices always rush in 'Diu Loka' and this is termed as god's 'Hirdya'. When God's heart contacts a Yogi's heart,

it is called yoga (Union). This yoga enables a yogi to gain knowledge of vibrations of sounds.

Oh Sages! when the heart which is made of five subtle elements is brought in contact with vibrations of 'Diuloka', where Divine souls (which have discarded their physical coil) contact yogi's souls, the yogi acquires complete knowledge that he is seeking and thus our great seers acquire the knowledge of Vedas.

Oh Sages! Just as we have this material world, similarly there is 'Diu Loka' where Jiwan-Mukta" (near liberation souls) live. Among them there are such souls as are dominated by fire elements & which are above attachment. These Divine souls are known as 'Deva Purshas'. Words in the microsome forms in 'Diu Loka' are indestructible and hence Oh Sages ! you should try to purify your words and if the words become impure, it will have impact on the entire universe. These atoms go into the making of 'Antakarna'. When these atoms become impure, the 'Satwik' elements decrease, the Indriyas (senses) are permeated with selfishness and due to this, words become polluted. Selfishness reigns supreme and at such a time a bloody revolution breaks out.

O Sages!

The point that I have been driving home is that we have to establish contact with those divine souls. My beloved Mahanand ji ! you know very well that the Yogis have to their credit austere practices of several births. By virtue of those long observed disciplines and practices, man becomes capable of establishing contact with the divine souls. The wave current of his thoughts, his mind, his vocal faculty, his intellect and those of his soul-conscience, all are rendered sublime and pure, the three bodies, the gross, the subtle and the causal, are charged with those currents. The mind alone has about one hundred and thirty six currents. If we can know one current the second, the third and so on become successively known, You see, thirty six types of currents are considered to





be belonging to the gross body and about seventy two belong to the subtle body. In this way the currents are many but I am making only a brief description. The intellect has one hundred and eighty four types of currents, Eighty four types of currents flow between the gross body and the sub-conscience. Eighty eight currents are such which are related to the subtle body. Other currents are considered to be belonging to the causal body. Similarly the divine lights belonging to vision are said to have been' constituted of 372 radiations of currents. 384 are said to be the currents belonging to the audio faculty. All these currents are related both to the Mind as well as to the Prana (the vital force). When the Mind and the Prana are harmonised, these currents are also synchronised. At that stage, my dear son, the being is transformed into a sort of causal light which attains God-hood. My son ! That particular goal is called Moksha (Salvation). It is attained when the Mind and the Prana are aligned, harmonised.

From which 'ghrit' (oblation) will these currents be actuated? I had dwelt upon this in my talks yesterday. For example cow's 'ghrit' (the essence and the essential oblation) is used in the Yajna-shala. It is the essence of the vegetables which the cow consumes. When that 'ghrit' is used as oblation, fire is lit up ; thousands of fire currents come into being. Similarly our senses have their respective currents. What type of 'ghrit' has to be offered to the 'Chitta' (the consciousness) which is the repository of our sense- lmpressions ?, What type of oblation is that? In this regard Bhringi Rishi and also many other rishis have expressed their views. It has been acknowledged that oblation constitutes partly of our thoughts and partly of our expressions. Just as the Yajna-mann (performer of the Yajna) gathers several types of sanctifying herbs and prepares 'Somrasa' (nectarine juice) out of those, similarly the Yogi also prepares a qualitative type of 'Somrasa'. Of what is that qualitative 'Somrasa' made? It is derived out of the ten Pranas and is then mixed up with the Mind currents. This process yields a very holy 'ghrit'. When this ghrit is offered

as oblation along with the sense-objects, then that great person, revelling into the Divine worlds transcends to the highest status of Godhood.

O Sages ! to-day I do not want to go deeper into this subject. It can, of course, be dealt with more profoundness but what I want to impress upon is that we should strive to live under the shadow of that Supreme Father; we should become the knowers of that 'ghrit' which is produced by the grace of that supreme soul. That 'ghrit' is activating the world of matter also. The same glorifies man's life. The same is the great Principle which pervades the Divine worlds. The person who knows all these currents, he becomes the seer of the entire panorama which is taking place in the gross, the subtle and the causal bodies and in the various Suns and the worlds, of this cosmos. That Yogi becomes capable of transcending into the various worlds through out. Just as an exponent of the physical sciences, having studied the atomic character of matter and thereby having developed material instruments becomes capable of visiting the various worlds, similarly sublimated body of a Yogi renders him capable of transcending into the various worlds of this entire cosmos. I am afraid lest I should not digress while so talking. To-day we are going to talk about the various worlds. What is the type of Yoga in Solar sphere? What type of 'Yoga' characterises Mars, the Dhruva planet & the Jethai Star? What type of Yoga dominated in the Asasvati worlds, in the Vashishta, Arundati, Saptrishi spheres and the other various types of spheres? That is the subject of our thoughts today.

As a matter of fact it is recognised, as I have related to you to-day, that for the divine souls there is left no world where they can not go. But besides that there is a usual consideration. In the solar sphere the Yajna and Yoga is performed with thoughts. With the thoughts we transcend ourselves. Because only that soul is capable of transcending into the solar sphere which has austered itself on the Earthly sphere. That soul does not have any specific attachment with





the Earthly principle. Its sub conscience is austered and seasoned by the Fire principle. It develops the characteristics, of such bodies which dominate with the Fire principle. In Mars, the living beings, their Yoga practice, their science and national order are considered to be akin to those as existing on this Earth. In the Lunar sphere, the being of 'Som' nature is considered to exist. There also is a pattern of Yoga. There also the glory of this vast panorama pervades.

To-day I am going to make a celestial expression. It often haunts my memory. In the modern times, as my dear Mahanand ji has apprised me, a scientist namely Somatiti has circumnavigated round this Earth planet several times. Again, as I am being intuited by the elemental atmosphere around me, there is a Spiritual master to-day who is named as Ridhiketu. He has made great strides in the field of Spiritual Science. The movement of his soul is so great that it returns to its casing after visiting this sphere of the Earth. Similarly, there are thoughtful deliberations in the Solar sphere. Just as divine souls deliberate and express thoughts on this Earth sphere, likewise it happens in the other spheres also. In some sphere the Fire principle predominates where as in some others the water element predominates. On this Earth planet, the Earth element predominates. In this regard I do not want to give much description to day. Only what I want to impress is that where the Fire principle predominates, there yajna and yoga are performed with the oblation of thoughts. There the 'ghrit' is said to be constituted of thoughts only. Where the Earth element (Parthiv Tatva) predominates, the 'ghrit' is obtained from animal kingdom (which in its turn lives on vegetable kingdom).

Today I do not want to elaborate much upon this subject as, otherwise, it will take us into denser zones of knowledge. I only want to infer that we should carry the contention with us that in some worldly spheres the Yajna is performed by cow's 'ghrit' in some others it is performed by thoughts while in some others it is performed by 'Prag' waters. In this way

man may be related to the other worldly spheres also.

My dear Son! you know that the yogic talks with which I have obliged you today have been the inference, and experience, of thousands of years. Hundred thousands of years have been spent on this research. To-day, I am unable to express fully becuase of my period of distress and curse. But my respected Gurudev used to say that it is certainly better to express something than not to express at all. Today my condition has become likewise handicapped. Those old days were how fine and splendid ! At the dead of night, letters could be visualised with the light of sub-conscience. The Yogi who attains divine eyes can read letters in night also.

Now the question may arise that when the Mind and the Prana are synchronized, both retain their individidual identities or they coexist in some other particular form. The attribute can not be separate from the attributed. The Atmana only mobilized the Mind by its mere contact. It only divides the Prana. This only is responsible for the functions of the body which is constituted of the world of matter. This Atma has been considered by some as microsome & by some others as macrosome. But most of the rishis, after long reflections & research, have been of the opinion that the Atma may be considered as microsome. As soon as Atma comes in contact with the world of matter, the divine lights of the three types of bodies are switched on. Their generation is considered to be from the heart. And in the heart (the seat of emotions) only the contact with Atma is established. The sages have so accepted that by mere contact (with Atma) only the heart cycle works.

My dear Mahanand ji generally desires to know my views in this regard, My observance is that the dynamic principle of this heart is such that it can scan the entire space. It is also believed that like this gross heart, there is a subtle heart with the help of which the divine souls Coordinate with each other or meet among themselves for





'Satsang' (a holy congregation). But in that realm also, the influences of the Mind and Prana prevail.

About 1552 currents emanate from the heart. In that about eightly four currents are perceivable by Yogic Science through which the seeker, by observing the prescribed yogic disciplines, and practices, becomes the knower of all the 1552 currents. Each of those currents, in its turn, gives rise to seventy two sub-currents. Those currents pretain to the Divine bodies; they as a whole constitute the Divine Body.

This subject of Yoga is a dense forest. In those currents there are 'Satoguni' currents; there are currents which are related to the innumerable worlds. Besides, there are many other different types of currents.

The Fire principle also has about 1552 currents. The Sound principle too has as many currents. Each current gives rise to seventy two sub-currents. The seventy second current has a specialised significance. With current the divine soul remains in harmony.

The essence of our talks is that we should try to know the Science of Yoga in right earnest. The Science of the Supreme Being is infinite. It evolves only just by His vicinity. The common men proclaim the description of all these currents as a mere hoax. Their intellect can not soar that high. Because, unless they have known in the field of their experience the currents of the intellect and the mind, how can they appreciate what is right? Some people of this type amass some vague talks according to their limited vision and thereby continue to prevail in ordinary society, but when they meet with the great people, with the elevated people or still more with the divine souls, then they begin to realize what 'Veda' is; what society is ; what the Divine world is and what Moksha is called.

My dear rishivar ! our talks of today are coming to an end now. Again it may be advised that we should be trying to understand the sublime currents which emanate from the Supreme Being. The Science of words also evolves from Him

only. When the mind is withdrawn from its sense-objects and the Brahmrandra is in resonance, then a note is produced which is known as 'Anad'. The being who can understand the overtones of that 'Anad' becomes the knower of the science of words.

The talks of today end here now. If I find time, I shall deal with the rest tomorrow. Now there will be some recital from the Vedas and then it is all over for to-day.

**Pujyapad Gurudev**

**Yogic Wisdom of the Ancient Rishies.**

**Parvachan Dated 13th April, 1971**

## मासिक सहयोग

| | |
|---|---|
| श्री हरीराम गुप्ता, केसर स्टील, वजीरपुर, दिल्ली | 1000 रुपये |
| श्री विवेक त्यागी, अल्कापुरी, हापुड़ | 1000 रुपये |
| श्री चिंतामणि त्यागी एवं श्री जगमोहन त्यागी बरला, मुजफ्फरनगर | 1000 रुपये |
| श्री अरुण त्यागी, राजनगर, गाजियाबाद | 500 रुपये |
| श्री संजीव त्यागी (दिनकरपुर) फरीदाबाद | 500 रुपये |
| श्री विनोद त्यागी सुपुत्र श्री जयप्रकाश त्यागी मकनपुर, गाजियाबाद | 500 रुपये |
| श्री वी.पी. सिंह, वसुंधरा, गाजियाबाद | 250 रुपये |
| डॉ. शुचि, डॉ. राजीव, आणद, गुजरात | 250 रुपये |
| श्रीमती शशि गुप्ता, नोएडा | 125 रुपये |
| डॉ. ओ.पी. आर्य, आगरा | 125 रुपये |
| श्री गुलजार सिंह, जगत पुरी, कृष्णा नगर, दिल्ली | 100 रुपये |
| श्रीमती वीना त्यागी, अलीगढ़। | 100 रुपये |
| श्री राहुल शर्मा, बैंगलोर | 100 रुपये |
| श्री पराग शर्मा, नोएडा | 100 रुपये |





# पुस्तक प्राप्ति के स्थान

योगनिष्ठ पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज की अमृतवाणी का साहित्य सँहिता, कैसेट्स, सी. डी. व डी. वी. डी. के रूप में निम्न स्थानों पर उपलब्ध है:

1. श्री महानन्द संस्कृत महाविद्यालय, लाक्षागृह, बरनावा, जि. बागपत, (उ. प्र.)। दूरभाष : 01234 240395
2. श्री गुरुवचन शास्त्री, मकान नं. 165/30ए, दक्षिण भोपा रोड़, निकट माढ़ी की धर्मशाला, नई मण्डी, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)। दूरभाष : 0131 2606414
3. सुश्री. नीरू अबरोल, के-3 लाजपत नगर-3, नई दिल्ली-110024 दूरभाष : 11-41721294
4. डॉ. मधुसूदनेश्वर प्रकाश, A-59 पंचशील एन्क्लेव नई दिल्ली–110017 दूरभाष : 011-26498737
5. श्री अनिल त्यागी, सी-47 रामप्रस्थ, गाजियाबाद, (उ.प्र.)। दूरभाष : 0120-4165802
6. श्री लोमश त्यागी, 106/4 पंचशील कालोनी गढ़ रोड़, मेरठ, (उ.प्र.) दूरभाष : 09412002233
7. डॉ. अशोक कुमार आर्य, आर्यावर्त कालोनी निकट मुरादाबादी गेट, अमरोहा, जिला-जे.पी. नगर (उ.प्र.) दूरभाष : 09412139333
8. श्री विवेक त्यागी, 16, अशोक कॉलोनो, अल्कापुरी, हापुड, (उ.प्र.)। दूरभाष : 0122-2316196
9. श्री आशीष त्यागी, डी-293, रामप्रस्थ, पोस्ट आफिस चन्द्र नगर, गाजियाबाद-201011 (उ.प्र.)। दूरभाष : 0120-2642052
10. मैं. हर्ष मेडिकोज, ए-2/31, सैक्टर-110, मार्किट नोएडा, फेस-2, (उ.प्र.) दूरभाष : 9899228860, 9871367937
11. श्री संजीव त्यागी, 1107, सैक्टर-3, बल्लभगढ़, फरीदाबाद हरियाणा। दूरभाष : 9910589486
12. श्री सुमन कुमार शर्मा, जे-380, सैक्टर बीटा-2, ग्रेटर नोएडा, (उ.प्र.) दूरभाष : 9313530505
13. श्रीमती बाला, 251, दिल्ली गेट, नई दिल्ली। दूरभाष : 011-23282088
14. श्री सतीश भारद्वाज, ग्राम बहेडी, रोहाना मिल, जिला मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)।
15. मैं. विजय कुमार, गोविन्द राम हासानन्द, 4408, नई सड़क, दिल्ली। दूरभाष : 011-23977216
16. जवाहर बुक डिपो, बुढ़ाना गेट, आर्य समाज मेरठ शहर (उ. प्र.)।

# उद्‌बोधन

हमें विचारना है कि हम सर्वत्र प्रभु को दृष्टिपात् करें, कण-कण में जब हम प्रभु को दृष्टिपात् करते हैं तो मानव पाप-कर्म नहीं करता। मानव पाप-कर्म उस काल में करता है जब परमात्मा को अपने से दूर कर देता है और दूर क्यों कर देता है? केवल अज्ञानता के वश क्योंकि वह प्रभु को जानता नहीं। जो मानव प्रभु को जानता है वह पाप नहीं करता, पाप वही मानव किया करता है जो प्रभु से दूर हो जाता है। जो प्रभु को कण-कण में, मनों में, चक्षुओं में, श्रोत्रों में, प्रत्येक इन्द्रिय में प्रभु की प्रतिभा स्वीकार करता है। जिसने जो वस्तु बनाई है उसमें वह रमण भी कर रहा है और जब मानव को यह निश्चय हो जाता है तो वहाँ मानव पाप नहीं करता।

**पूज्यपाद-गुरुदेव**





**वर्ष 41 : अंक : 490**
**जुलाई 2013**

**मूल्यः**
**पाँच रुपये**

**प्रकाशक, मुद्रक : डा० मधुसूदनेश्वर प्रकाश (प्रकाशन मंत्री वै.अ.स.) द्वारा**
**वैदिक अनुसन्धान समिति पञ्जी०**
**के लिए नवप्रभात प्रिटिंग प्रैस, दिल्ली से छपवाकर**
**सी-38, शिवालिक, मालवीय नगर, नई दिल्ली-17 से प्रकाशित।**
**(अवै०) सम्पादक : डा० मधुसूदनेश्वर प्रकाश, दूरभाष :**
**011-26498737**

POSTED AT N.D.PS.O ON 10/11-07-2013
**Published on 5th day of the same month**